[redacted]

[redacted]

वर्ष-१६ अंक-११
२७ नवंबर २०१८

ओ३म्

पंजीयन संख्या म.प्र./भोपाल 32/2018-20
एक प्रति- २०.०० रु.

संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है ..

वैदिक रवि

मध्य भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा का प्रमुख पत्र

※ एक दृष्टि में आर्य समाज ※

- आर्य समाज की मान्यता का आधार सत्य सनातन वैदिक धर्म है।
- सनातन वह है जो सदा से था, सदा रहेगा। सत्य सनातन धर्म का आधार वेद है।
- वेद ज्ञान का मूल परमात्मा है।
- यही सृष्टि के प्रारंभ का सबसे पहला ज्ञान, पहली संस्कृति और समस्त सत्य विद्याओं से पूर्ण है।
- वेद ज्ञान किसी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय या किसी महापुरुष के ज्ञान के अनुसार नहीं है और न ही किसी समय व स्थान की सीमा में बन्धा है।
- परमात्मा की कल्याणी वाणी वेद समस्त प्राणियों के लिए और सदा के लिए हैं।
- इसे पढ़ना-पढ़ाना श्रेष्ठ (आर्य) जनों का परम धर्म है।
- ईश्वर को सभी मानते हैं इसलिए विश्व शान्ति इसी ईश्वरीय ज्ञान वेद से संभव है।
- आर्य समाज-अविद्या, कुरीतियों, पाखण्ड व जाति प्रथा जैसी सामाजिक बुराईयों को दूर करने वाला तथा सत्य ज्ञान व सनातन संस्कृति का प्रचारक है।

ओ३म्
वैदिक रवि
मासिक

वर्ष 16 अंक–11

27 नवम्बर 2018
(सार्वदेशिक धर्मार्थ सभा के निर्णयानुसार)
सृष्टि सम्बत् 1,96,08,53,119
विक्रम संवत् 2075
दयानन्दाब्द 194

सलाहकार मण्डल
राजेन्द्र व्यास
पं. रामलाल शास्त्री 'विद्याभास्कर'
डॉ. रामलाल प्रजापति
वरिष्ठ पत्रकार

प्रधान सम्पादक
श्री इन्द्रप्रकाश गॉंधी
कार्या. फोन : 0755 4220549

सम्पादक
प्रकाश आर्य
फोन : 07324 226566

सह सम्पादक
श्रीमती डॉ. राकेश शर्मा

सदस्यता
एक प्रति – 20–00 रू.
वार्षिक – 200–00 रू.
आजीवन – 1000–00 रू.

विज्ञापन की दरें

आवरण पृष्ठ 2 एवं 3	500 रू.
पूर्ण पृष्ठ (अन्दर)	400 रू.
आधा पृष्ठ (अन्दर का)	250 रू.
चौथाई पृष्ठ	150 रू.

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	**सम्पादकीय**	4
2.	स्वामी दयानन्द	6
3.	बोधकथा	7
4.	ईश्वर अद्भुत कलाकार है	9
5.	गंवादी उम्र तुझे पाने में ..	12
6.	यह यज्ञ विश्व की नाभि केन्द्र है	13
7.	जिन्दगी और मिठास	20
8.	अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द	21
9.	प्रकृति	24
10.	समाचार	25–26

दिसम्बर माह के पर्व त्यौहार एवं जयन्ती

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जयन्ती	03

सम्पादकीय –

प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में आहत समाज

किसी भी तन्त्र को संचालित करने में उसकी आधारशिला, उसकी अपनी रीति नीति होती है। रीति नीति उसे व्यवस्था प्रदान करती है, उसी व्यवस्था में अधिकार व कर्तव्यों का सामंजस्य होकर संगठन को व्यवस्थित चलाया जाता है।

किन्तु केवल रीति नीति नियम कानून बनाने मात्र से उस तन्त्र की सफलता नहीं हों जाती। उस नीति के महत्व को जब तक जिनके लिए उसका निर्माण हुआ वह ठीक–ठीक समझ न ले और न केवल समझ ले अपितु उसे धारण न कर ले तब तक उसके प्रयोजन की पूर्ति नहीं होगी और वह रेती के महल जैसी बनकर रह जावेगी। जन साधारण का एक बड़ा भाग उस वर्ग में आता है जो देश, समाज, संविधान, नियम, कानून को ठीक से नहीं समझ पाता। जब समझ ही नहीं पाता तो उसका पालन करना, उसका लाभ लेना, उसका अनुसरण करना तो बहुत दूर की बात हो जाती है। देश का संविधान देश के प्रत्येक नागरिक से संबंध रखता है, जिसमें उसकी स्वतन्त्रता अधिकार, कार्यसीमाओं को बताया गया है। किन्तु इसका ज्ञान भारत जैसे देश मे कितनों को है ? कितने इसको समझकर जीवन में लाभ उठा पाते हैं ? करोड़ों देशवासियों में गिनती के कुछ लोगों को ही यह सौभाग्य प्राप्त होता है।

जन–जन तक प्रजातन्त्र की भावना और उसकी रूपरेखा को पहुंचाने का नैतिक दायित्व देश के अग्रणी पंक्ति में आने वाले राष्ट्र की बागडोर जिनके हाथों में रहती है उनका है। वे स्वयं इसका पालन कर अपने चरित्र से और साक्षरता से इसको जन–जन तक पहुंचावे। क्योंकि राष्ट्र का संचालन उसका निर्माण, उसकी सुरक्षा और उन्नति में प्रजातान्त्रिक देश के प्रत्येक नागरिक की समान भागीदारी होती है।

किन्तु कुछ लोगों को आम नागरिकों की यह जागरूकता अपने लिए खतरा लगती हैं। इसलिए प्रजातन्त्र के रहस्यों को कुछ लोगों को अपने तक सीमित रखना ही उनका उद्देश्य बना हुआ है।

फिर ज्ञान देने वाला, समझ देने वाला कौन हो सकता है ? अन्धा किसी को रास्ता नहीं दिखा सकता, भ्रष्टाचार और व्यावसायिक राजनीति से घिरे जन प्रतिनिधि क्या किसी को प्रजातन्त्र के महत्व को समझायेगें ?

प्रजातन्त्र के सही अर्थों से दूर व्यक्ति आज भी नौकरशाही और अपने द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों को ही सबकुछ मानकर उनकी दया पर जी रहे हैं। ब्रिटिश काल में एक आम व्यक्ति की जो स्थिति थी उसको अपने घर में, अपने ही व्यक्ति के समक्षं भोग रहे हैं।

प्रजातन्त्र राज्य संचालन की आधारशिला है मतदान। किन्तु समाज का बहुत बड़ा वर्ग अपने संवैधानिक अधिकारों से दूर होने के कारण मतदान कर... एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में मानता हुआ मतदान करता है जो किसी के द्वारा समझाने पर, आश्वासन पर, लालच या अन्य प्रकार से

प्रभावित कर दे दिया जाती है। इसमें स्वविवेक से प्रत्याशी, व्यक्ति, पार्टी आदि का कोई विचार नहीं।

यही कारण है आज जाति बल, धन बल और बाहु बल प्रजातन्त्र पर हावी हो रहा है। परिवारवाद चरम सीमा पर राजनीति में फैल गया है जो वंशानुगत व्यापार के रूप में पिता, पुत्र, बहू को विरासत में मिलता है। आज प्रजातन्त्र का सबसे बड़ा मजाक है दुर्भाग्य यही है।

किसी देश के लिए प्रजातन्त्रीय प्रणाली सर्वोत्तम और समानाधिकार प्रदान करने वाली है। इसके माध्यम से मानव–मानव के मध्य ऊँच–नींच, छोटे–बड़े के उभरे भेदों को नष्ट किया जा सकता है। देश के एक नागरिक के लिए शिक्षा–स्वास्थ सुरक्षा पहली आवश्यकता है। किन्तु आज पहले पायदान शिक्षा से ही अप्रजातान्त्रिक व्यवस्था प्रारंभ हो जाती है। एक वर्ग बमुश्किल अक्षर ज्ञान प्राप्त कर पाता है साधारण सी पढ़ाई करके जैसे तैसे चपरासी क्लर्क मास्टर तक पहुंच पाता है। वहीं दूसरा सक्षम वर्ग जो सम्पन्न वर्ग है लाखों के पैकेज दिलाने वाली उच्च श्रेणी की नौकरी या किसी प्रोफेशन को प्राप्त करने हेतु शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम होता है।

ये असमानता की खाई जीवन के प्रथम पायदान से प्रारंभ होकर अन्त तक बनी रहती है। क्या यही प्रजातन्त्रीय व्यवस्था होना चाहिए ? इन सबका दोष किसे दें, अपराध वहीं अधिक होते है जहां अज्ञानता हो जिन्हें अपने अधिकारों के लिए चिन्ता न हो, कोई प्रयास न हो।

प्रजातन्त्र का सीधा सीधा अर्थ होता है किसी कार्य संचालन में समानाधिकार संयुक्त सांझा। वैसे इसकी परिभाषा कुछ ऐसी ही दर्शायी गई जिसमें सब कुछ आम व्यक्ति को बताया गया। किन्तु वह मुहावरा बन कर रह गया, हाथी के दर्शनीय दांत जैसा बन कर रह गया। कथनी और करनी में जमीन आसमान का अन्तर परिलक्षित होता है।

लालफीता शाही और कुर्सी का नशा क्या कुछ नहीं कर रहा हैं ? बड़े बड़े जघन्य अपराध बड़े बड़े काण्ड कौन कर रहा है ? इसमें शोषण किसका हो रहा है ? कौन सारे जुल्मों को सह रहा है ? वही जिसका यह देश है जिसकी इसमें संचालन में भागीदारी है ? कितना बड़ा धोखा है, प्रजातन्त्र के नाम पर। **जनता का, जनता के लिए, और जनता के द्वारा** प्रजातन्त्रीय राज्य की बात कहकर व प्रजातन्त्र के नाम पर दिया थोथा नारा मन बहलाने के लिए ठीक है किन्तु यथार्तता से बहुत दूर है।

अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा उसकी पृष्ठभूमि में संघर्ष था प्रयास था पाकीस्तान बन गया, बागंला देश बन गया उसके पीछे भी प्रयास था अनेक बातों के लिए जन आन्दोलन से संघर्ष कर उन्हें मनवा लिया जाता है। आततायी स्वच्छन्द सरकार को झुकना पड़ता है। वैसे ही प्रजातन्त्र के महत्व को समझकर उस प्रणाली को लागू करवाने के लिए भी एक सशक्त प्रयास जो जन जन का आन्दोलन हो उसकी आवश्यकता है।

अन्यथा प्रजातन्त्र के नाम पर देश, परिवार, पार्टी, और चन्द लोगों की मुट्ठी में तथाकथित चालाक प्रबुद्ध व्यक्तियों तक ही सिमिट कर रह जावेगा।

स्वामी दयानन्द

पुस्तकों का जादू

पं. सूर्यकुमार शर्म रईस कानपुर, स्वामीजी के बड़े विरोधी थे। वह स्वामीजी के साथ हुए हलधर के शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। जब वहां से चलने लगे तो स्वामीजी की ओर ईंटें फेंकी। फिर कोई स्वामीजी की पुस्तक उनके सामने लाता तो वह क्रोध से उसे फाड़ना ही चाहते थे। किन्तु एक बार पुस्तकों की सुन्दरता देखकर उनका मन उन्हें पढ़ने को हुआ, बस, फिर क्या था। उनके सारे सन्देह उन्हें पढ़कर दूर हो गये और संवत् 1940 में जब आर्य समाज स्थापित हुआ तो वह भी उसके सदस्य बन गये। यह था स्वामीजी की पुस्तकों का जादू जो कट्टर से कट्टर शत्रु को भी मित्र बना देती थी।

101 प्रश्नों का उत्तर

सन् 1869 ई. में प्रयाग के कुंभ मेले पर गंगा के प्रसिद्ध ब्रह्म समाजी नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर स्वामीजी से मिलने आये। वार्तालाप के पश्चात उन्होंने स्वामीजी को कलकत्ता आने का निमन्त्रण दिया। उनके साथ एक बंगाली सज्जन माधवचन्द्र चक्रवर्ती भी थे जो बहुत धनी और बड़े तार्किक समझे जाते थे। उन्होंने 101 प्रश्न लिख रक्खे थे और जो धर्मोपदेशक मिलता उसको वे ही प्रश्न पूछकर निरूत्तर कर देते थे। हिन्दू धर्म से उनका विश्वास उठ गया था और वे नास्तिकता और इस्लाम की ओर झुकते जा रहे थे। स्वामी जी के पास आकर भी उन्होंने वे ही 101 प्रश्न पूछे, परन्तु स्वामीजी के तर्क पूर्ण उत्तरों के सामने उनकी एक न चली और उन्होंने सहर्ष स्वामीजी के उपदेश को ग्रहण कर लिया। स्वामीजी के वे इतने कृपा पात्र बन गये कि स्वामीजी ने स्वयं अपने हाथ से सन्ध्या, मन्त्र आदि लिखकर उन्हें दिये, जिनका वे प्रतिदिन जप करने लगे।

सत्य का स्वरूप और सत्यार्थ का ग्रहण करना

जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। विद्वान आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित करा दे, पश्चात वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्य के अर्थ को ग्रहण और असत्य के अर्थ को परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

बोध कथा –

बातों का जाल

दो राहगीर थे वे दोनों एक ही गॉव पैदल जा रहे थे। एक का नाम विष्णु व दूसरे का नाम मोहन था, विष्णु बहुत चालाक था। दूसरों को हमेशा वह मूर्ख बनाने का प्रयास करता। चलते–चलते मन में अपने साथी राहगीर को मूर्ख बनाने के विचार से कहा, मोहन रास्ता बहुत लम्बा है, अपन कुछ बातें करते हैं, रास्ता कट जावेगा, पर एक शर्त है तू मेरी बात को मना नहीं करेगा, मैं तेरी बात को मना नहीं करूँगा। जो मना करेगा वह 500 रू. जुर्माना भरेगा। मोहन विष्णु को बहुत अच्छी तरह से जानता था कि यह बहुत चालाक है पर उसने विष्णु की शर्त स्वीकार कर ली।

बात विष्णु ने प्रांरंभ की बोला – एक बार बहुत जोर की बारिश हुई उस समय मेरे दादाजी जिन्दा थे। गांव के मैदान में हजारों लोग इकट्ठे थे। मेरे दादाजी के पास बहुत बडा छाता था। उन्होंने मैंदान में छाता खोल दिया हजारों लोग उस छाते के नीचे आकर खड़े हो गए और भीगने से बच गए। फिर मोहन बोला–सही है न। बात तो पूरी गप थी, किन्तु मोहन उसे मना करता तो 500 रू. देने पड़ते, उसने कहा हॉ सत्य है।

अब मोहन की बारी थी, मोहन ने कहा तुम्हारे दादाजी ने जब छाता लगाया था वह पानी मेरे दादाजी ने बरंसाया था। विष्णु ने कहा कैसे ? विष्णु ने कहा– उस साल पानी नहीं गिर रहा था, तो मेरे दादाजी ने बहुत बड़े भाले से बादल में छेद कर दिया। छेद कुछ बड़ा हो गया था इसलिए गांव में पानी ही पानी हो गया। सही है या नहीं, विष्णु से हॉ भर दी।

विष्णु ने फिर कहा एक बार बहुत जोर की आंधी चली, मकान उड़ने लगे, झाड़ गिरने लगे, यहां तक की अपने गांव के पशु और आदमी भी उड़ने लगे। उस समय मेरे दादाजी ने एक बहुत बड़ी दिवार यहीं पत्थरों की बनाई थी, जो पहाड़ के समान हो गई, ये पहाड़ जो गांव के बाहर है वह उन्हीं ने मिट्टी, पत्थर इकट्ठा करके बनाये थे। बोलों सही है ना, मोहन ने सिर हिलाते हुए कहा, सही है।

मोहन ने सोचा इसे चुप करना जरूरी है, कब तक इसकी झूठी हॉ में हॉ मिलाता रहूँगा। कुछ उपाय करना चाहिए। सोचकर मोहन बोला – देखो भाई, तुम्हारे दादाजी और मेरे दादाजी दोनों दोस्त थे। एक बार गांव में अकाल पड़ा तो मेरे दादाजी से तुम्हारे दादाजी ने 10 बोरा गेहूँ उधार लिया। गेहूँ उधार लेते समय यह भी कहा था कि यदि मैं यह उधारी नहीं चुका पाऊँगा तो मेरे लड़के या मेरे पोते चुका देगें। इस प्रकार वह 10 थैला

गेहूँ आज तक तुम्हारे परिवार वालों पर बाकी चला आ रहा है। आपने मेरे दादाजी की शर्त के अनुसार अब आपको मुझे 10 बोरा गेहूँ लौटाना चाहिए, बोलो सही बात है ना ?

अब तो विष्णु की चालाकी खुद को ही उलझा चुकी थी। यदि वह कहता है कि सही है तो 10 बोरा गेहूँ देना पड़ता है। यदि वह कहता है गलत है तो 500 रू. मोहन को देने पड़ेगें।

इस प्रकार चालाक विष्णु अपनी बातों के जाल में खुद ही फंस गया और 500 रू. देना पड़े।

अपने को बहुत समझदार समझने वाले और दूसरों को मूर्ख समझने वाले ऐसे ही जाल में उलझते हैं।

गाय सर्वोत्तम क्यों !

गौ और कृषि अन्योन्याश्रित हैं। इसीलिए महर्षि ने गोकृष्यादिरक्षिणी सभा नाम रखा था। गाय का दूध सर्वोत्तम क्यों हैं ? इसमें निम्नलिखित मुख्य विशेषताएं हैं –

1. गाय का दूध पीला और भैंस का दूध सफेद होता है। इसीलिए इसके दूध के विशेषज्ञ कहते हैं कि गाय के दूध में सोने का अंश होता है जो कि स्वास्थ्य के लिए उत्तम है और रोगनाशक है।

2. गाय का दूध बुद्धिवर्धक और आरोग्यप्रद है।

3. गाय का अपने बच्चे के साथ स्नेह होता है जबकि भैंस का बच्चे के साथ ऐसा नहीं होता है।

4. गाय के दूध में स्फूर्ति होती है। इसीलिए गाय के बछड़े व बछियॉ खूब उछलते कूदते फिरते हैं। भैंस का दूध पीने से आलस्य व प्रमाद होता है।

5. गाय के बछड़े को 50 गायों या अधिक में छोड़ दिया जाय तो वह अपनी माता को जल्दी ही ढूँढ़ लेता है। जबकि भैंस के बच्चों में यह उत्कृष्टता नहीं होती।

6. गाय का दूध तो सर्वोत्तम होता ही है, साथ ही गाय का गोबर व मूत्र भी तुलना में श्रेष्ठ है। गाय का गोबर स्वच्छ व कीटनाशक होता है। गाय की खाद तीन वर्ष तक उपजाऊ शक्ति बढ़ाती है किन्तु भैंस की खाद तो एक दो वर्ष बाद ही बेकार हो जाती है और गौमूत्र का स्प्रे करके कीड़ों के नाश में भी उपयोग लिया जाता है।

ईश्वर अद्‌भुत कलाकार है

– ओम कुमार आय

पं. गुरूदत्त विद्यार्थी महर्षि के समकालीन वे वैदिक विद्यान थे जिन्होंने अपनी असाधारण विद्वता के बलबूते योरोपीय विद्वानों को वेद – विषयक भ्रामक धारणाओं, मान्यताओं और व्याख्याओं का न केवल सटीक खण्डन ही किया अपितु उन्हें यह मानने पर विवश कर दिया कि वेदार्थ की अपनी एक अलग पद्धति है जो पाणीनीय 'अष्टाध्यायी' आचार्य वास्क कृत 'रिरूक्त' 'निघण्टु' आदि पर आधारित हैं। वैदिक संस्कृत 'तत्सम' संस्कृत है तथा लौकिक संस्कृत तद्‌भव है। 'तद्‌भव' की व्याकरण अलग है, 'तत्सम' की अलग है। पं. गुरूदत्त ने अपनी पुस्तिका 'वैदिक शब्दावली' में नमूने के तौर पर दो–तीन मन्त्रों के अर्थ विशुद्ध वैदिक पद्धति से किये हैं और साथ में मोनियर विलियम्स, मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों के किए हुए अनुवाद भी उद्धत किये हैं और तुलना करके दर्शाया है कि किस प्रकार इन पाश्चात्य विद्वानों ने कहीं जानबूझकर और अधिकतर अपनी नासमझी से अर्थ का अनर्थ करके वैदिक वांगमय के साथ घोर अन्याय किया है।

पं. गुरूदत्त द्वारा किये गये ऋग्वेद के मन्त्र के अनुवाद पर प्रकाश डालने से पूर्व जहां यह स्पष्ट करना भी नितांत समीचीन है कि उन्होंने बड़े विस्तारपूर्वक वेदार्थ करने संबंधी उन अत्यन्त त्रुटिपूर्ण अवैदिक पद्धतियों की प्रमाण सहित आलोचना करके उनकी निरर्थकता सिद्ध की है जो कि भूतकाल में सायण, महीधर, उव्वट आदि भाष्यकारों द्वारा प्रयुक्त की गई थी और उन्नीसवीं सदी के उक्त विद्वान भी उसी का अनुसरण कर रहे थे। यहां यह बताना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि पं. गुरूदत्त ने वेदार्थ संबंधी त्रुटिपूर्ण पद्धतियां को 3 वर्गों में बांटा है – 1. पौराणिक 2. ऐतिहासिक 3. समकालीन

और इन तीनों को ही वेदार्थ के विषय में अत्यन्त दोषपूर्ण, अपर्याप्त एवं अनुपयुक्त सिद्ध किया है। फिर कुछ वेदमन्त्रों का संक्षेप्तः भाष्य करके सही वेदार्थ का उदाहरण प्रस्तुत किया है जिनमें अग्रलिखित मन्त्र एक है –

ओ3म् तरणिर्विश्वदर्शतो ज्यातिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमाभासि रोचनम्।। ऋ. 1/50/4

और इस मन्त्र के आधार पर बहुत ही रोचक एवं सरस शैली से बताया है कि परमपिता परमेश्वर जो सृष्टि का कर्ता, धर्ता एवं संहर्ता है, एक कुशल चित्रेरा है, अद्‌भुत कलाकार है जिसकी सारी रचना विस्मयकारी रूप में विविध्तापूर्ण, बहुरंगी, अत्यन्त आकर्षक एवं बेजोड़ है। उसकी कारीगरी बेमिसाल है। किन्तु पं. गुरूदत्त के अर्थ से पहले आओ उस अर्थ को भी देख लें जो मोनियर विलियम्स ने किया है और पण्डित जी ने अपनी पुस्तिका में उसको उद्धत किया है, उसका अर्थ इस प्रकार है–

'हम मरणधर्मा मनुष्यों की पहुंच से परे, तुम हे सूर्य देव, अपने यात्रापथ पर

सतत् अग्रसर रहते हो, एकदम कांतिमान दृश्यमान्। तुम प्रकाश के स्त्रोत हो और अपने प्रकाश से सारी सृष्टि को प्रकाशित करते हो।

– मोनियर विलियम्स

उक्त अर्थ से स्पष्ट है कि एम विलियम्स ने सूर्य शब्द का प्रचलित शब्दकोषीय (रूढ़) अर्थ लिया है और उसी की गति, कार्य आदि का वर्णन किया है जो कि मन्त्र का एकदम सतही अर्थ है और वास्तविक अर्थ से कोसों दूर है। पं. गुरूदत्त ने वेदार्थ की शास्त्रोक्त पद्धति का अनुसरण करते हुये शब्दों के 'यौगिक' धातुपरक एवं योगरूढ़ि अर्थ करते हुये तरणि और सूर्य को भौतिक सूर्य मात्र नहीं कहा जो अपने सौर मण्डल का अधिपति है और उसे आलोकित करता है किन्तु सूर्य को यहां परमपिता परमेश्वर का वाचक माना है। जो अपनी अनन्त सामर्थ्य और रचना शक्ति से अनन्त प्रकार की आकृतियों, विविधतापूर्ण बहुरंगी दृश्यों का सृजन करता है।

वह परमेश्वर निरालस त्वरागति से अपने नियमों के अन्तर्गत अपने करणीय क्रियाकलाप करता रहता है और उसके कार्य हम प्राणियों की पहुंच और पकड़ से परे हैं। आगे वे कहते हैं कि रंग, रूप भौतिक पदार्थों के अंतर्निहित गुण नहीं है किन्तु सूर्य की उपस्थिति से उनके अलग–अलग रूप रंग व्यक्त होते हैं। घोर अंधकार संब रंग, रूप हर लेता है, काला, पीला, नीला, लाल, सफेद आदि सब एक समान हैं घोर अन्धकार में। किन्तु सूर्य के प्रकट होते ही वे सब अपनी अलग–अलग छटा, छवि, आकृति, रंग, रूप प्रस्तुत कर देते हैं। ऐसा वे स्वयं नहीं कर रहे, सूर्य का सहारा पाकर कर रहे हैं।

वे बतलाते हैं कि उक्त मन्त्र भी परमेश्वर की इसी प्रगटन, प्रकाशन, सर्जन एवं चित्रण शक्ति ओर इंगित कर रहा है। वे तो यह संकेत भी करते हैं कि वह परमात्मा रूपी सूर्य अपनी अथाह एवं असीम ज्ञान–राशि रूप प्रकाश की किरणें प्राणिमात्र के लाभ और भले के लिये सतत् सब ओर बिखेरता रहता है। उन्हीं के शब्दों में वह विलक्षण आभायुक्त सूर्य (परमेश्वर) कभी भी अस्त न होता हुआ (विश्व दर्शतः) प्राणिमात्र के हितार्थ कार्यरत् है, सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाश पूरित कर रहा है और इसे मोहक आकार, प्रकार, विविध रंग रूप प्रदान कर रहा है। (ज्योतिष्कृद्) उस न अस्त होने वाले परमेश्वर की अनन्त आभा से (सूर्य आभासी) यह ब्रह्माण्ड दिव्य आभा से युक्त हैऔर अवर्णनीय रमणीयता एवं आकर्षण से युक्त है। मन्त्र के भाव को और स्पष्ट करते हुए अत्यन्त भाव विभोर होकर आस्तिक पं. गुरूदत्त कहते हैं कि उस कुशल सृष्टा, रचयिता, कालाकार, अनुपम चितेरे की महिमा देखो कि इधर अथाह समुद्र हिलोरे मार रहा है, उधर तपता रेगिस्तान दूर–दूर तक फैला हुआ है, इधर विशाल, उच्चश्रृंगों वाली पर्वतमाला है, उधर पाताल तक गये हुये डरावने खड्ड हैं, इधर नदियों की कल–कल, उधर पक्षियों की मनमोहक चहक, इधर धरती पर विविध नजारे उधर तारों सजा अनन्त रहस्य समेटे नील गगन आदि।

ये सब उस दिव्य कारीगर की दिव्य कारीगरी, दिव्य मनोहारी नमूने हैं। इन्हीं को देखकर आर्य समाज की पुरानी पीढ़ी के अत्यन्त आस्थावान् हरियाणवी लोकगायक दादा बस्तीराम के कण्ठ से भी सहसा फूट पड़ा था –?

'धन, धन है तेरी कारीगरी करतार' और समीक्षकों को इंग्लिश महाकवि जी चॉसर के काव्य में गजब की विविधता देखकर ईश्वरीय रचना की विविधता याद आई और बोल उठे –

चॉसर के काव्य में "ईश्वर की सृष्टि की विविधता" की झलक मिलती है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि महान वैदिक विद्वान एवं गवेषक पं. गुरूदत्त विद्यार्थी ने उक्त मन्त्र का शास्त्र–सम्मत विधि से अर्थ करते हुए ईश्वर की अप्रतिम रचना शक्ति अनुपम रचना कौशल, मनमोहक कारीगरी, आकर्षक कला एवं मंत्र मुग्ध कर देने वाली मनोरम चित्रण शक्ति का बोध करवाया है। वास्तव में ही ईश्वर अद्‌भुत कलाकार है, कवि है और जो सौभाग्यशाली व्यक्ति पूर्ण आस्थाभाव से उसके दोनों काव्यों दृश्य काव्य (संसार) श्रव्य एवं पाठ्यकाव्य (वेद) को देखता पढ़ता है वह भी उस अमर कलाकार के संग से अजर, अमर हो जाता है, क्योंकि उसी दिव्य कलाकार ने वेद के माध्यम से अन्यत्र कहा है – देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति।

हमें अपने ऋषियों, अपने पूर्व गामी आर्ष विद्वानों के साहित्य का अध्ययन करने की आदत डालनी चाहिये ताकि हम सही अर्थ को जान सकें, गलत को त्यागकर सही को जान सकें, गलत को त्यागकर सही को जीवन में धारण करें और वेदाध्ययन से जीवन में सुख की प्राप्ति कर सकें।

विदाई

शिक्षा प्राप्त करके तपस्वी दयानन्द ने गुरू दण्डीजी को लौंगों से भरी एक थाली भेंट की। पर दण्डी जी बोले, वत्स ! संसार में अज्ञान फैला हुआ है। देश मे वेद विद्या लुप्त हो रही है। इस बढ़ते हुए अन्धकार को चीरकर सत्य धर्म का, वेद का प्रकाश करो, यही हमारी गुरू दक्षिणा है।

गुरू से यह आशीर्वाद और नई प्रेरणा ले स्वामी दयानन्द विदा हुए। देश के कोने–कोने में घूमकर उन्होंने अज्ञान के घोर अन्धकार को दूर करने में अपने प्राणों का जिस प्रकार होम किया, संसार उसे भली भांति जानता है। ऐसा था दण्डीजी का प्रशिक्षण।

अन्त में सन् 1868 में 71 वर्ष की आयु में दण्डी स्वामी विरजानन्द महाराज ने इस भौतिक देह को छोड़ दिया। उनकी मृत्यु पर महर्षि दयानन्द ने आर्त स्वर में कहा था – आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।

यह है, दण्डीजी का आदर्श चरित्र, जिनका लोहा भारत ही नहीं, सारा संसार माना है।

गंवादी उम्र तुझे पाने में

गंवादी उमर पूरी तुझे पाने में।
भटकता फिरा, सारे जमाने में।।
जाने कितने उपवास, व्रत कर डाले।
घूमे जाने कितने मंदिर, और शिवाले।।
तीरथ स्नान जिन्दगी भर करता रहा।
शरीर को तपा धूप, सर्दी सहता रहा।।
नाम से तेरे लुटता रहा, धर्म के ठेकेदारों से।
चढ़ावा चढ़ाता रहा, वहां हजारों से ।।
पर तू तो दाता है, सबका भंडार तू।
देवता तू, सबका, पालन हार तू।।
तुझे तेरी ही चीजें देता रहा।
सूखी नदिया में नाव खेता रहा।।
पर ये सब बाहर की आंखों ने करवाया।
ज्ञान चक्षु का ख्याल ही नहीं आया।।
ढूंढ़ना था जहां, बस वहीं ढूंढ़ा नहीं तुझे।
भटका दिया, उलझा दिया, जमाने ने मुझे।।
पहले ही अगर मन मंदिर में, तुझे देखा होता।
तो तेरे नाम पर नहीं होता, कोई धोखा।।
देखा जब अन्दर की आंखें खोल, तो तुझे हरदम वहां पाया।
तू इतना करीब था कि **प्रकाश**, तुझे समझ ही न पाया।।

प्रकाश आर्य, महू

यह यज्ञ विश्व की नाभि (केन्द्र) है।

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः

यजुर्वेद 23/62

मंत्र के इस भाव को पढ़कर एक विचार उत्पन्न होता है कि समस्त विश्व की नाभि अर्थात् केन्द्र यज्ञ को क्यों बताया ?

शरीर में नाभि का बहुत महत्व है यदि नाभि में कोई विकृति आ जावे अपने स्थान से थोड़ी सी इधर–उधर हो जावे तो सम्पूर्ण शरीर अस्वस्थ, अव्यवस्थित हो जाता है। एक दृष्टि से शरीर का मुख्य केन्द्र बिन्दू नाभि है जहां से सब नियन्त्रित होता है।

वेद मन्त्रों में विषय को सरल करने तथा समझाने की दष्टि से अनेक उदाहरण दिए है। उनका सन्दर्भ विषय से बहुत स्पष्ट और सटिक होता है। इसी प्रकार यज्ञ की शरीर के अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग नाभि से तुलना की है। वेद का एक शब्द या अक्षर भी बिना कारण उल्लेखित नहीं है उसका कोई महत्व अवश्य ही होता है यह हमें पूर्ण विश्वास से मानना चाहिए।

इसी विचार को ध्यान में रखते हुए यज्ञ विश्व की नाभि है परमात्मा का यह उपदेश भी सार्थक है अनुकरणीय है।

सम्पूर्ण विश्व की उन्नति, अवनति का ज्ञान रखने वाला इस परिस्थिति को समझने वाला एकमात्र मानव ही है। यदि विश्व का मानव सुखी है तो कहा जावेगा सम्पूर्ण विश्व सुखी है, यदि संसार का मानव दुःखी है तो यही कहा जावेगा कि संसार दुःखी है। तात्पर्य यह कि संसार के सुखी या दुःखी होने का मापदण्ड मानव है।

मनुष्य का जीवन दो बातों पर आधारित है बाहरी जिसे भौतिक कहते हैं एवं दूसरा आन्तरिक।

आश्चर्य है ये दोनों ही बातें यज्ञ से नियन्त्रित हैं, इन दोनों का केन्द्र यज्ञ है, इस पर विचार करते हैं। यज्ञ को शतपथ ब्राह्मण में कहा **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"** अर्थात श्रेष्ठ कर्मों में भी सर्वश्रेष्ठ कर्म, यज्ञ है।

विश्व को व्यवस्थित व नियन्त्रित रखने के लिए सर्व प्रथम आवश्यक है जीवन की सुरक्षा और जीवनोपयोगी तत्वों की।

जीवनोपयोगी तत्वों को देखें तो शरीर (स्वास्थ) व प्राण महत्वपूर्ण है। जिन साधनों से स्वास्थ्य व प्राण बने रहें अर्थात् मनुष्य अधिक समय जीवित भी रहे और स्वस्थ्य भी रहे उनमें प्रमुख है आहार, जल–वायु–वनस्पति (औषधि) आदि हैं।

इनके बिना जीवन संभव नहीं है, जब तक ये शुद्ध व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते रहे तो समस्त मानव जीवन सुगम, स्वस्थ, दीर्घायु रहा। किन्तु अन्यान्य कारणों से जीवनोपयोगी साधन पर्याप्त मात्रा में और शुद्ध रूप में नहीं प्राप्त होने, से जीवन दुर्भर, रोगी और अल्पायू वाला होने लगा इसमें कोई सन्देह नहीं।

यज्ञ से अनेक लाभ इस भौतिक जगत को होते हैं यज्ञ एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है इस प्रक्रिया पर अनेक अन्वेषण हुए जिनसे चमत्कारिक लाभ हुए इसके अनेक उदाहरण सत्य घटनाओं पर आधारित विद्यमान हैं।

यज्ञ का प्रभाव मनुष्य जीवन पर तो है ही पेड़, पौधों, वनस्पतियों पर भी इसका बहुत असर होता है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण मेरी स्वयं की जानकारी में कुछ है जिन्हें प्रस्तुत कर लेख में अपनी बात की पुष्टि करना उचित समझता हूं।

महू (म. प्र.) में माल रोड पर श्री इन्द्रजीत गोस्वामी रहते थे। उनके मकान के बाहर एक जाम का पेड था परन्तु उसमें जाम नही के बराबर लगते थे, फल पकने के पहले ही सूख जाता या डाल से गिर जात थे।

उसी मकान को श्री इन्द्रजीत गोस्वामी ठेकेदार ने किराए से रहने के लिए प्राप्त किया और रहने लगे। श्री गोस्वामी की पत्नि बड़ी धामिक प्रवृत्ति की महिला थी वे प्रतिवर्ष अपने यहां वैदिक पद्धति से 7 दिवसीय वेद पारायण यज्ञ करवाती थी। यह यज्ञ प्रायः एक विदुषी माता करूणा देवी करवाया करती थी।

संयोगवश यज्ञ स्थल उसी जाम के पेड के पास था और यज्ञ बडे स्तर पर होता था। दो वर्ष के यज्ञ सम्पादन होने का परिणाम हुआ, वह जाम के पेड पर देखने को मिला वह आश्चर्यजनक था। वृक्ष पर जाम का फल बहुत अधिक मात्रा में, तथा आकार में बड़ा लगने लगा उसका स्वाद भी अच्छा मिठास लिए हो गया। यह यज्ञ से प्राप्त उर्जा का प्रभाव था।

इसी प्रकार जबलपुर के पास एक आम के वृक्ष के नीचे ही बडे यज्ञ का आयोजन हुआ तीन वर्ष तक निरन्तर उस वृक्ष के फल व आकार संख्या में वृद्धि होती रही, तीसरे वर्ष की फसल का आम जब प्रदर्शनी में रखा तो उस वृक्ष के आम को प्रथम पुरूस्कार मिला।

महू के ही श्री वेदप्रकाश आर्य जो पारसी गली में रहते हैं उनके आंगन में एक अंगूर की बेल लगी हुई थी। उसकी बढ़त सामान्य से कम थी किन्तु उनके द्वारा यज्ञ की राख जो कई दिनों के यज्ञ से इकट्ठी हो गई थी वह उन्होंने उसकी जड़ में डाल दी। इसका प्रभाव कुछ दिनों में ही देखा गया कि वह बेल जितनी 5–6 साल में नहीं बढ़ी थी उतनी एक बारिस याने 3–4 माह में बढ़ गई।

अभी–अभी कुछ दिनों पूर्व खरगौन जिले के ग्राम महेश्वर के एक परांजपेजी का दैनिक टाईम्स ऑफ इण्डिया में यह बयान प्रकाशित हुआ था कि उसने अपने

खेत पर यज्ञ करना प्रारम्भ किया इससे उसके खेत की पैदावार पर काफी अच्छा प्रभाव हुआ है।

वैज्ञानिक प्रगति की दौड़ में अग्रणी अनेक देश अमेरिका, जापान में यज्ञ के प्रभाव का फसल व वनस्पति पर परिक्षण किया गया वहां भी यज्ञ पद्धति को महत्व दिया जा रहा है।

यज्ञ कोई जादू--टोना नहीं है कोई ईश्वरीय या दैविय चमत्कार भी नहीं है। यज्ञ विधि सम्पन्न करने में जिन पदार्थों का उपयोग होता है वे सभी पौष्टिक व स्वास्थ वर्धक औषधि है। अग्नि के सम्पर्क से उनकी क्षमता कई गुना बढ़ जाती है और वायु मण्डल के माध्यम से दूर–दूर तक फैलकर अपना प्रभाव छोड़ती है। इस कारण यज्ञ का प्रभाव पेड, पौधों, वनस्पतियों पर भी होता है। यज्ञ से पेड, पौधे, वनस्पति, अनाज की वृद्धि तो होती है इसके प्रभाव से उनकी पौष्टिकता भी प्राप्त होती है। जब अनाज, फल, फूल, औषधियां शुद्ध व पौष्टिक होंगी और ऐसी वस्तुओं का उपयोग जब किया जावे तो उसका असर स्वास्थ पर निश्चित है। इस प्रकार यज्ञ खाद्यान्न पदार्थों को शुद्ध व पौष्टिक बनाता है।

यज्ञ से वायु मण्डल की शुद्धि होती है। आज का वातावरण विशैला हो रहा है, प्रदूषण एक बहुत बड़ी समस्या के रूप में सामने खड़ा है। वैज्ञानिकों का मत है यदि प्रदूषण इसी गति से बढ़ता गया तो आने वाले 100 वर्षों में प्रत्येक को ऑक्सीजन की पेटी बॉधकर चलना होगा।

तेजी से बढ़ते डीजल, पेट्रोल चलित वाहन, नए–नए विशाल कल कारखाने, फीज, गैस, एयरकंडीशनर न जाने कितने वैज्ञानिक खोज पर आधारित साधन प्रकृति के वातावरण को दूषित करते हैं। इसी प्रदूषण के कारण प्रकृति का संतुलन गड़बड़ा रहा है। कभी सर्दी के मौसम में गर्मी का एहसास तो कभी गर्मी में बारिश या सर्द मौसम पाया जाता है। बारिश कभी समय से पूर्व तो कभी समय बीत जाने पर होती है। गर्मी का पारा वर्षों का रेकार्ड तोड रहा, कहीं बारिश ने कहर ढ़ा दिया ये सब जीवन को प्रभावित करने वाले कारण हैं।

यह सब प्राकृतिक वातावरण में फैल रहे प्रदूषण का ही कारण है। प्रदूषण का बहुत प्रभाव स्वास्थ्य पर जीवन पर पड़ता है।

प्रदूषण के कारण अनेक प्रकार की बिमारियां बढ़ रही है, चर्म रोग फैल रहे हैं, स्वास्थ्य व आयु में गिरावट आ रही है। नजर के चश्में छोटे–छोटे बालकों को लग रहे हैं, कम उम्र में बाल सफेद या उड़कर गंजापन दे रहे हैं।

इन सारी समस्याओं का निदान भी यज्ञ है। यज्ञ से निर्मित स्वास्य वर्धक यज्ञ में अग्नि के सम्पर्क में आए सुगन्धित औषधि युक्त पदार्थ से उत्पन्न का प्रभाव पृथ्वी व द्योलोक में मिला होता है। इससे प्रदूषण, विशैलापन समाप्त हो जाता है इसके दो उदाहरण प्रत्यक्ष रूप से जिनके द्वारा देखे गए वे अभी जीवित हैं।

भोपाल में लगभग' 20 वर्ष पूर्व किसी फैक्ट्री से जहरीली गैस का रिसन हो गया उसका कुप्रभाव हजारों नागरिकों पर हुआ। रात के अन्धेरे में नागरिक अपनी जान बचाकर कई–कई किलोमीटर तक भागे। अनेक इससे प्रभावित होकर जान गवां बैठे किसी की ऑख तो किसी की कान–नाक की स्थाई अयोग्यता हो गई।

किन्तु ऐसे स्थान पर कुछ ऐसे परिवार रहते थे जो दैनिक यज्ञ अपने घर पर करते थे। उनके पास यज्ञ सामग्री व यज्ञ पात्र उपलब्ध थे उन्होंने अपने घर के दरवाजे बन्द किए और तुरन्त अग्नि प्रज्वलित कर यज्ञ प्रारम्भ कर घी और हवन सामग्री की आहुतियॉ देना प्रारंभ कर दिया। परिणाम स्परूप उन परिवारों को कहीं जाना नहीं पड़ा और गैस का भी उन पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

काफी दिनों तक शहर के उस क्षेत्र में गैस की दुर्गन्ध व प्रभाव रहने पर वहॉ मोहल्ले–मोहल्ले में बड़े–बड़े यज्ञ आर्य समाज के माध्यम से किए गए व वातावरण शुद्ध किया गया।

इसी प्रकार महाराष्ट्र के दुधी ग्राम में प्लेग फैल गया आकस्मिक मौत होने लगी ऐसे समय आर्य समाज के सन्यासी स्वामी कर्तव्यानन्द ने यज्ञ करने की प्रेरणा दी। गली–गली में बड़े–बड़े यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। इसे सामाजिक कर्म मानकर वहां कें मुस्लिम सज्जनों ने भी इसमें हिस्सा लिया और प्लेग के प्रभाव को रोका ही नहीं समाप्त कर दिया।

ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें यज्ञ का प्रभाव हुआ है प्रदूषण दूर हुआ है। यज्ञ से आयु और प्राण दोनों को बल मिलता है इसीलिए तो कहा गया–

आयु यज्ञेन कल्पताम – यज्ञ से आयु समर्थ करो।

प्राणः यज्ञेन कल्पताम – यज्ञ से प्राण समर्थ करो।

मनुष्य जीवन व पेड, पौधों, वृक्षों के लिए पानी आवश्यक वस्तु है। पानी ही अन्न, वनस्पति, खेती का आधार है। किन्तु प्रकृति की बदली हुई स्थिति में आज पानी की निरन्तर कमी हो रही है जल स्तर नीचे जा रहा है। नदियां, तालाब, कुंए, नलकूप वर्षाऋतु के कुछ दिन बाद ही सूखे दिखाई देते हैं।

वनों में वृक्षों की कमी हो रही, नए पेड पौधे पानी के अभाव में पनपते नहीं। इन सबका असर तथा विशैली गैस व धुंए के बादल आकाश में जाकर सारी अव्यवस्था उत्पन्न कर रहे हैं। जन जीवन अन्न, जल के अभाव में भूखों मर रहा है। कहीं–कहीं तो मीलों पानी नहीं है, ऐसे भी स्थान हैं जहां पानी को पाना उनके लिए बडी उपलब्धि मानी जाती है।

किन्तु इस समस्या को भी यज्ञ के माध्यम से सुलझाया जा सकता है।

यज्ञ से वर्षा संभव है हजारों स्थानों पर यज्ञ के माध्यम से वर्षा करवाई गई है इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

विदेशी वैज्ञानिकों ने कृत्रिम वर्षा करवाने का एक यन्त्र बनाया है जिसका आकार यज्ञ कुण्ड के समान ही है।

भगवान कृष्ण ने इसी बात का गीता में यह सन्देश दिया है –

यज्ञात् भवति पर्जन्यों।

अर्थात् – यज्ञ से वर्षा होती है। इतना ही नहीं अन्न प्रकृति के लिए भी यज्ञ का महत्व बताते हुए योगीराज श्रीकृष्ण कहते हैं –

अन्नाम्दवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्न संभवः।

यज्ञाम्दवति पर्जन्यो यज्ञ कर्म समुम्दवः।। गीता 3/14

मानव शरीर को अन्न की, अन्न को वर्षा की और वर्षा के लिए बादल होना जरूरी है। वर्षा के बादलों के लिए यज्ञ सहायक है। इस प्रकार यज्ञ अन्न, जल प्रदान करने में भी सहयोगी है।

इन सारी स्थितियों पर विचार करने के उपरान्त ही वायु, अन्न, जल की शुद्धता व प्रदूषण रहित वातावरण बना रहे इस हेतु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह विचार दिया कि **प्रत्येक व्यक्ति इस सृष्टि को दूषित करता है। इसलिए प्रतिदिन हर गृहस्थ को दैनिक हवन करना चाहिए।**

उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट हो गया कि भौतिक दृष्टि से अन्न, जल, वायु, वनस्पति को प्रदूषण से बचाने के लिए यज्ञ महत्वपूर्व कर्म है। इसलिए भौतिक दृष्टि से इसके महत्व को कम नहीं आकां जा सकता और भौतिक व्यवस्था, सुरक्षा व उर्जा की दृष्टि से यज्ञ विश्व की नाभि है यह बिल्कुल सही है।

हमारे पूर्वज अज्ञानी नहीं थे। स्वास्थ, चरित्र और सदाचार के प्रति बहुत जागरूक थे, इसीलिए प्राचीन समय में बड़े–बड़े यज्ञों का आयोजन होता था। राज्य की ओर से राजा स्वयं ये करवाते थे इसके पीछे यही समाज कल्याण व सुरक्षा की भावना थी। जैसे–जैसे इससे हम दूर होते गए दुःखों, बीमारियों के नजदीक हो रहे हैं।

विश्व उत्थान, सुख–शान्ति, उन्नति का दूसरा आन्तरिक पहलू है आचार–विचार–व्यवहार इनसे ही स्वर्ग और इनसे ही नर्क का अनुभव होता है।

देवत्व का आधार भी यज्ञ है। यदि जीवन की अन्तरिक स्थिति ठीक नहीं है तो मात्र बाहरी साधन सर्वांगीण उन्नति के आधार नहीं हो सकते। मनुष्य का शुद्ध अन्तःकरण ही आत्मोन्नति, शाश्वत सुख व सफलता का आधार है।

आज के वातावरण में मनुष्य का सोंच केवल अपने या अपने वालों तक सीमिटकर रह गया है। परमार्थ की भावना की निरन्तर कमी हो रही है। स्वार्थ मानव जीवन का लक्ष्य बन चुका है। परिणाम समाज में घोर असंतोष, अन्याय व्याप्त है। मानव--मानव का दुश्मन बन गया अपने छोटे से लाभ के लिए वह बड़े से बड़ा पाप करने में संकोच नहीं करता। किसी का बहुत नुकसान भी उसके छोटे से लाभ के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। स्वार्थ व मतलब की आन्धी में रिश्तों को वह अनदेखा कर रहा है। इन सबके पीछे उसकी संकुचित भावना परोपकार विहीन प्रवृत्ति ही है।

इस मानसिकता को यज्ञ के माध्यम से दूर किया जा सकता है। यज्ञ का सम्पादन देवपूजा, दान, संगतिकरण ये तीन संदेश देता है। एक याज्ञिक के स्वभाव में देवत्व, संगठन और दान की भावना आती है। उसके विचार अपने तक सीमित नहीं रहते हैं। वह यज्ञ के सम्पादन में कई बार कहता है इदन्नमम–इदन्नमम अर्थात् यह मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है। न चाहते हुए भी यज्ञ का लाभ सबको पहुंचाता है। त्याग भाव से नित्य यज्ञ उसके जीवन को मम केवल मेरा की भावना से दूर कर देता है।

यह वह कर्म है, जिसे करने वाला तो लाभ प्राप्त करता ही है किन्तु उसके साथ ही दूसरों को भी उसका लाभ मिलता है। इतना ही नहीं, यह गुप्त दान के समान है, यज्ञकर्ता के चाहने या ना चाहने पर भी सबको लाभ पहुंचाता है। इसीलिए इसे श्रेष्ठतम् कर्म कहा, इससे दान की प्रवृत्ति में वृद्धि होती है। यज्ञ करने वाला अपना समय, सामग्री और धन लगाकर यज्ञ करता है किन्तु उसके परिणाम के लिए कहता है **''इदन्नमम्''** अर्थात् यह मेरा नहीं। इस प्रकार दान की भावना का द्यौतक यज्ञ कर्म है। दान की प्रवृत्ति लोभ, मोह, राग, द्वेष, कृपणता का अन्त कर सहयोग व दया का भाव देती है। इसी प्रवृत्ति से संसार सुखी हो सकता है, भाईचारा, एक–दूसरे के प्रति सहयोग, सद्भावना आ सकती है।

हम देवताओं की पूजा पानी से, वस्तुओं से करते हैं किन्तु वे उसे प्राप्त नहीं करते जो उन्हें चढ़ाते हैं वह उन तक नहीं पहुंच पातीं। देवताओं को खिलाना है तो उसका एक ही माध्यम है उनको यज्ञाग्नि के माध्यम से तृप्त किया जा सकता है यज्ञ में डाले पदार्थ पूरे ब्रह्माण्ड में फैलते हैं। इसलिए बताया गया,देवताओं का मुख अग्नि है **''अग्निं देवस्य मुखम्''** देवताओं को प्रसन्न करने उनको देने के लिए यज्ञ ही एक माध्यम है।

यज्ञ एक पवित्र कर्म माना जाता है तथा जब इसका सम्पादन होता है तो परिवार, संबंधी इष्ट मित्र सभी एकत्रित होते हैं। बड़े आयोजनों में तो पूरे गांव व नगर के व्यक्ति संयुक्त रूप से एकत्रित होकर इसे करते हैं। इस प्रकार यह सबको संगठित करता है, याज्ञिक कर्म में अनेक व्यक्ति जब एकत्रित होकर यह शुभ कर्म करते हैं तो प्रेम भाव व संगठन बढ़ता है।

जब ये स्थिति निर्मित हो जावें, तो स्वर्ग की कहीं और कल्पना करने की आवश्यकता नहीं, वह इसी धरती पर वह हम प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए कहा गया कि **"स्वर्ग कामो यजेत्"** स्वर्ग की कामना वाले यज्ञ करें।

इस प्रकार संसार का सुव्यवस्थित संचालन व नियन्त्रण का कार्य बाह्य व आन्तरिक केवल, केवल यज्ञ (शुभ कर्मों) से संभव है। इसलिए इस यज्ञ को संसार की नाभि मानना बिलकुल उचित व अर्थपूर्ण है।

यज्ञ कर्म का अर्थ अग्निहोत्र के अतिरिक्त समस्त शुभकर्मों से भी है। याज्ञिक कर्म का अर्थ शुभ कर्मों से है। यज्ञ प्रेरणा देता है हमें शुभ कर्म करने की, क्योंकि देवपूजा, दान, संगतिकरण इसके प्रमुख आधार हैं।

शुभ कर्मों को गहराई से देखें तो वे कार्य जो अपने अतिरिक्त औरों को भी लाभकारी हैं दूसरों को भी सुख पहुंचाने वाले हैं वे शुभ कर्म की श्रेणी में आते हैं। परोपकार, परमार्थ, निष्काम कर्म ये सारे यज्ञिक कर्म कहलाते हैं।

जब मनुष्य के मन में परहित का विचार जाग्रत हो जावे तो स्वार्थ भाव गौण हो जाता है इससे ही विवाद राग–द्वेष का अन्त होता है। स्वार्थ भाव आसुरी और निस्वार्थ भाव देवत्व का प्रतीक है।

भगवान कृष्ण ने इस यज्ञ के महत्व को समझते हुए लिखा –

यज्ञ शिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्वषैः।

भुन्जते ते त्वद्यं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात।।

अर्थात् – परमार्थ त्याग जो केवल अपने स्वार्थ लिए दिन–रात भाग–दौड़ कर अपने लिए भोजन व अन्य व्यवस्था करते हैं दूसरों के कल्याण व उपकार की भावना जिनमें नहीं वे पापी हैं मानो पाप ही खा रहे हैं।

अर्थात् – याज्ञिक जीवन वाला ही पुण्यात्मा है, यज्ञ प्रत्येक को करना चाहिए। एक दृष्टान्त आता है – ऋषि चरक ने शिष्य अग्निवेश से कहा पुत्र ये संसार दुःखी हो जावेगा।

शिष्य ने प्रश्न किया गुरूदेव – वह क्यों ?

उत्तर था – दुनिया यज्ञ (याज्ञिक कर्मों) से दूर हो रही है यही कारण है। आज ऋषि चरक की संभावना सत्य घटित हो रही है। इसलिए विश्व के संतुलन हेतु यज्ञ को जीवन का एक अभिन्न अंग मानना चाहिए।

– प्रकाश आर्य, महू

जिन्दगी और मिठास

जिन्दगी से मीठी भी कोई चीज होती है ? नहीं। जिन्दगी से मीठी संसार में कोई चीज नहीं है। हॉ, सब लोग उस मिठास का अनुभव नहीं कर पाते। जिनका हाजमा खराब हो जाता है उनको मिठास रास नहीं आती। जिनका जायका खराब हो जाता है उनको जिन्दगी मीठी नहीं लगती।

कुछ लोग शिकायत किया करते हैं कि उनकी जिन्दगी में कड़वापन भर गया है। कुछ जिन्दगी को खारा और अन्य कसैला बताते हैं। वस्तुतः यह उनका भ्रम मात्र होता है। हर आदमी अपनी जिन्दगी से प्यार करता है। ऑखो से दिखाई न दे, जीभ लड़खड़ाने लग जाए, हाथ पैरों की शक्ति जवाब दे दे, कानों से सुनाई न देता हो, दॉत टूट जाऍ–तब भी, किसी भी कीमत पर, कोई मृत्यु को स्वीकार करेगा ? कदापि नहीं।

घोर संकट में भी आदमी अपने जीवन की रक्षा करना चाहता है। आदमी की सबसे पहली आदिम चाह जीवन धारण करना है। उसको किसी भी कीमत पर कोई खोना नहीं चाहता।

फिर जिन्दगी से शिकायत क्यों करते हो ? इसलिए कि उनकी शिकायत करने की आदत पड़ जाती है। उनकी शिकायत को सही मान लें और यह स्वीकार कर लें कि जिन्दगी में कड़वाहट या कसैलापन है अथवा खारापन या तीखापन है तो भी यह बात तो प्रमाणित है कि प्राकृतिक जगत में इन सबसे मिठास बनता है। मीठापन अपने आपमें कुछ नहीं होता। वह तो विविध रसों की ही परिणति है।

गन्ना खारा होता है। पकने पर मीठा हो जाता है। आम खट्टा होता है। पक जाने पर वह भी मीठा हो जाता है। निम्बोली कड़वी होती है। पकरने पर मीठी हो जाती है। मिर्ची तीखी होती है। उसके भी छिलके मीठे होते हैं। आंवला कसैला होता है। उसे खाकर पानी पीने पर मीठा लगता है। इसे देखकर कहा जा सकता है कि मिठास सारे रसों की परिणति है। अपने आप जिन्दगी के कड़वेपन, खारेपन, तीखेपन, कसैलेपन के बीच में से मिठास पैदा होती है। मिठास अपने आपमें कुछ है ही नहीं।

आवश्यकता इस मिठास को पहचानने की है। इसी का नाम जीवन रस है। जिन्दगी को जीवन रस से आपूरित करने की बात पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। संघर्षमय जीवन से तो जीवन रस अपने आप पैदा होता चला जाता है। जो चुनौतियों से डरते हैं, कठिनाइयों को देखकर भागते हैं, अधूरे मन से काम शुरू करके उसे बीच में छोड़ देते हैं, किसी पर विश्वास नहीं करते, किसी के विश्वास भाजन नहीं बनते, सुबह से शाम तक हाय हाय किया करते हैं उनके जीवन में जीवन रस नहीं भर पाता। उनके जीवन में मिठास भी पैदा नहीं होती। जब जिन्दगी मीठी हो और उसमें मिठास भरना अपने हाथ की बात हो और उस मीठेपन से वंचित रह जाऍ तो उसे कैसी जिन्दगी कहेगें।

– पंचोली

सनातन धर्म के प्रहरी :

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

कोई व्यक्ति बुरी रहों पर चलकर भी, यदि जीवन को सुधारने का प्रबल संकल्प कर ले, तो वह कल्याण–मार्ग का पथिक बन सकता है–इस उक्ति को चरितार्थ करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द का बचपन का नाम मुंशीराम था। उनके पिता लाला नानकचन्द मूलतः पंजाब के निवासी थे, किन्तु उत्तर प्रदेश की पुलिस सेवा में रहने के कारण उनके जीवन का अधिकांश भाग वाराणसी, बाली, बदायूं, मिर्जापुर आदि नगरों में व्यतीत हुआ। मुंशीराम का जन्म 1854 में अपने पिता के ग्राम तलवन (जिला जालंधर) में ही हुआ, किन्तु उनकी शिक्षा मुख्यतः काशी में हुई। अपने किशोर काल में वे कट्टर पौराणिक थे। बिना विश्वनाथ शिव का दर्शन किये अन्न जल भी ग्रहण नहीं करते थे। किन्तु मूर्तिपूजा से उन्हें अचानक विरक्ति हो गई। हुआ यह कि काशी के विश्वनाथ मन्दिर में रीवा की महारानी जब दर्शनार्थ गई तो सामान्य भक्तों को मन्दिर में घुसने ही नहीं दिया गया।

धर्म के नाम पर की जाने वाली प्रायः इसी प्रकार की घटनाएँ अन्दर के पट खोल देती हैं। तब दिखावे के पाखण्ड आदमी को नास्तिक बना देते हैं। फिर मुंशीराम तो सूझबूझ के धनी तरूण थे। ऐसे भगवान की भक्ति कैसे करते, जिसे राजा–रानी के आने पर देखने का अधिकार भी न हो ? मुंशीराम की विरक्ति में भी यही गुल खिलाया। यूरोप के नास्तिक दर्शनों तथा डार्विन के विकासवाद के अध्ययन ने उनके हृदय में बची–खुची आस्तिकता की भावना को भी सर्वथा निर्मूल कर दिया। उस समय वे अपने पिता के पास बरेली में रहते थे।

1889 के वर्ष में स्वामी दयानन्द का बरेली में आगमन हुआ। पिता को तो पुलिस व्यवस्था के नाते स्वामी दयानन्द का प्रवचन सुनना था, परन्तु वही प्रवचन का जादू सिर चढ़कर बोल गया। उन्होंने पुत्र मुंशीराम को भी आग्रह करके भेज दिया।

नास्तिक मुंशीराम पिताजी के कहने पर बुझे मन से स्वामीजी के उपदेशों को सुनने के लिए चले जाते हैं, जहां उनकी सारी नास्तिकता दूर हो जाती है। स्वामी जी के प्रवचनों को सुनकर मुंशीराम का मानो पुनर्जन्म हो जाता है।

स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी आत्मकथा में उन सभी दुर्गुणों, दुर्व्यसनों तथा अभद्र आदतों का स्पष्ट विवरण दिया है, जिसके कारण उनका जीवन पतन की सीमा तक पहुंच गया था। ऋषि दयानन्द के संसर्ग ने मुंशीराम के जीवन की धारा को बदल दिया। वे उन सभी बुराईयों से मुक्ति पा गए जिनके कारण उनका जीवन नरक बन गया था।

1881 में मुंशीराम लाहौर आए और कानून की पढ़ाई में लग गए। इसी नगर में पहले वह ब्रह्मसमाज के सम्पर्क में आए, किन्तु उनकी धार्मिक एवं आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का पूरा समाधान, आर्य समाज में आकर ही हुआ। दयानन्द के महान ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" के अध्ययन से उनकी अनेक शंकाओं का निवारण हुआ। तब वे विधिवत् आर्य समाज के सदस्य बन गए।

वह युग आर्य समाज के इतिहास का स्वर्णिम काल था। पं. गुरूदत्त, लाला लाजपतराय और लाला हंसराज जैसे जीवनदानी युवकों ने, वैदिक धर्म की सेवा का व्रत लेकर आर्य समाज में प्रवेश किया था। मुंशीराम भी इसी मित्र मण्डली के एक महत्वपूर्ण सदस्य रहे।

लाला मुंशीराम का सामाजिक जीवन सक्रिय रूप से जालंधर में आरंभ हुआ। वहाँ वे वकालत करने लगे थे। आर्य समाज जालंधर ने शीघ्र ही उन्हें अपना प्रधान निर्वाचित कर लिया। वे नियमित रूप से व्याख्यानों, सत्संगों तथा शास्त्रार्थों के द्वारा आर्य समाज के प्रचार में संलग्न हो गए। मुंशीरामजी की धर्म प्रचार के लिए लगन अपूर्व थी। वे समय निकालकर समीपवर्ती कस्बों और नगरों की आर्य समाजों के उत्सवों में जाते, वहां व्याख्यान देते, और यदि आवश्यकता पड़ती तो विधर्मियों से शास्त्रार्थ भी करते। पं. दीनदयालु जैसे प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान से शास्त्रार्थ के मंच पर टक्कर लेकर, उन्होंने अपने अध्ययन तथा वाक्चातुरी का सिक्का जमाया। यह सब उन्होंने अपने स्वयं उपार्जित धर्मग्रंथों के स्वाध्याय से ही किया।

किन्तु मुंशीराम के व्यक्तित्व को तो अभी राष्ट्र व्यापी स्वरूप लेना था। प्रारंभ में वे स्वामी दयानन्द की स्मृति में लाहौर में स्थापित किये गए डी. ए. वी. कॉलेज की संचालन व्यवस्था में सहभागी रहे। थोड़े समय बाद उन्हें यह अनुभव हो गया कि इस शिक्षा प्रणाली में, संस्कृत भाषा और वैदिक एवं आर्ष शास्त्रों के अध्ययन को, अंग्रेजी की तुलना में गौण स्थान दिया जा रहा है। तब उनके मन में ऋषि दयानन्द द्वारा उपदिष्ट, गुरूकुल शिक्षा प्रणाली को मूर्तरूप देने का विचार आया।

मानस्वी लोग जब किसी विचार को हृदय में ले आते हैं तो उसे क्रियान्वित करने में भी देर नहीं करते। जैसे ही गुरूकुल स्थापना का विचार लाला मुंशीराम के मन में आया, उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से उसे स्वीकार करा लिया। यह प्रतिज्ञा करके घर से निकल पड़े कि जब तक गुरूकुल के लिए एक निश्चित धनराशि वे एकत्र नहीं कर लेगें, तब तक अपने नगर में लौटकर नहीं आएँगें। सचमुच दृढ़व्रती थे मुंशीराम। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में थोड़ी भी कठिनाई नहीं हुई। वे निश्चित अवधि के पूरा होने से पहले ही, संकल्पित राशि से भी अधिक धन एकत्र कर लाए।

इस प्रकार मार्च 1902 में, गंगा के किनारे कांगड़ी ग्राम में गुरूकुल आरम्भ हुआ। महात्मा मुंशीराम ने अपने तप, त्याग, श्रम और लगन से, इस गुरूकुल को देश के एक प्रमुख सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय शिक्षण संस्थान के रूप में, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाई। पुरातन भारतीय शिक्षा प्रणाली को मूर्त रूप देने के लिए, जिस संस्था को एक नन्हें पौधे के रूप में आज से 92 वर्ष पूर्व रोपा गया था, वह कालान्तर में नाना शाखा, प्रशाखाओं से युक्त होकर, एक महान वृक्ष का रूप ले सकी। कालान्तर में, अन्य मत–सम्प्रदायों के लोगों ने भी जब अपनी शिक्षण संस्थाएं स्थापित की, तो उन्होंने भी गुरूकुल के आदर्शों को ही न्यूनाधिक रूप में स्वीकार किया।

गुरूकुल शिक्षा की एक विशेषता, उसके छात्रों में राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति के भावों को भरना भी था।

जब गुरूकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने स्वदेश हित को सर्वोपरि मानकर, लोक कल्याण के कार्यक्रमों को अपनाया, तब, तत्कालीन ब्रिटिश शासकों के मन में, गुरूकुल को अनेक प्रकार के सन्देह पनपने लगे। महात्मा मुंशीराम नहीं चाहते थे कि शासकों की वक्र दृष्टि से गुरूकुल को व्यर्थ में ही हानि हो, अतः उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड तथा संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जेम्स मैस्टन को गुरूकुल में आमंत्रित किया और उन्हें वास्तविकता से परिचित करा दिया।

शीघ्र ही, वैदिक आश्रम–व्यवस्था के अनुसार महात्मा मुंशीराम ने सन्यास की दीक्षा ले ली। मुंशीराम से वह स्वामी श्रद्धानन्द बन गए। स्वामीजी का सार्वजनिक जीवन, केवल आर्य समाज तक ही सीमित नहीं था। देश की आजादी के आन्दोलनों में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई। महात्मा गांधी तथा उनके कार्यों से तो वे तभी परिचित हो गए थे, जब बैरिस्टर मोहनदास गांधी दक्षिण अफ्रीका को अपना कार्यक्षेत्र बनाकर, प्रवासी भारतीयों की सेवा कर रहे थे। भारत में आने के पश्चात गांधीजी ने गुरूकुल कांगड़ी आकर महात्मा मुंशीराम से व्यापक विचार विमर्श किया था। जब महात्मा गांधी ने सत्याग्रह और असहयोग का कार्यक्रम देशवासियों को दिया, तब मातृभूमि की पुकार को सुनकर राष्ट्रहित के लिए अपनी आहुति देने को स्वामी श्रद्धानन्द आगे आए।

30 मार्च 1919 को जब दिल्ली की जनता का नेतृत्व करते हुए, वे चॉंदनी चौक के घण्टाघर में पहुंचे, तो गोरखा पलटन के सिपाहियों ने उन्हें अपनी संगीनों का लक्ष्य बना लिया। यह वीर सन्यासी के तेजोद्दीप्त मुखमण्डल तथा उनकी निर्भीक वाणी का प्रभाव ही था कि वे उद्दण्ड सैनिक, उन पर गोली का प्रहार करने का साहस नहीं जुटा सके।

स्वामी श्रद्धानन्द की राष्ट्र के प्रति की गई सेवाओं का उल्लेख संक्षेप में किया जाना भी संभव नहीं है। जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद जब पंजाब में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन आयोजित किया जाना प्रायः असंभव था, उस समय अमृतसर में सफलतापूर्वक राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन सम्पन्न करा लेना, और उसके स्वागताध्यक्ष के पद से प्रथम बार हिन्दी में स्वागत भाषण प्रस्तुत करना, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे स्वाधीनचेता महापुरूष के लिए ही संभव था।

अब स्वामीजी ने यह अनुभव किया कि जब तक हिन्दू समाज को संगठित नहीं किया जाता, और हिन्दू धर्म को त्यागकर, अन्य मतों को स्वीकार करने वालों के लिए हिन्दू धर्म के द्वार पुनः नहीं खोल दिए जाते, तब तक भारत का राष्ट्रीय हित भी संभव नहीं है। इसी विचार को लेकर स्वामीजी ने शुद्धि और संगठन पर जोर दिया। महामना मदनमोहन मालवीय के साथ उन्होंने हिन्दू महासभा के कार्यक्रमों में भी रूचि दिखाई। अब वे अछूतोद्धार को प्रमुखता देने लगे। कुछ वर्ष पूर्व इस्लाम ग्रहण करने वालों को पुनः हिन्दू समाज में प्रविष्ट करने का अभियान चलाया।

कट्टरपंथी मुसलमान स्वामीजी के शुद्धि और संगठन के इस कार्यक्रम से घबराहट अनुभव कर रहे थे। जो अत्यन्त मदान्ध किस्म के लोग थे, उन्होंने स्वामी जी की हत्या करने का षड़यन्त्र रचा। इसी के परिणामस्वरूप 23 दिसम्बर 1926 को अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द ने बलिदान का मार्ग अपनाया और कर्तव्य की वेदी पर स्वयं को न्यौछावर कर दिया।

· प्रकृति

प्रश्न 8 : आध्यात्मिक दुःख किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्वयं की त्रुटि (मूर्खता) से प्राप्त होने वाले दुःख को आध्यात्मिक दुःख कहते हैं।

प्रश्न 9 : आधिदैविक दुःख किसे कहते हैं ?

उत्तर : बाढ़, भूकम्प, अकाल आदि प्राकृतिक विपदाओं से प्राप्त होने वाले दुःख को आधि दैविक दुःख कहते हैं।

प्रश्न 10 : आधिभौतिक दुःख किसे कहते हैं ?

उत्तर : अन्य पशु–पक्षी मनुष्य आदि जीवों से प्राप्त होने वाले दुःख को आधिभौतिक दुःख कहते हैं।

प्रश्न 11 : क्या प्रकृति से अपने आप संसार बन सकता है ?

उत्तर : नहीं, ईश्वर की शक्ति व सहायता बिना प्रकृति से अपने आप संसार नहीं बन सकता है।

प्रश्न 12 : क्या प्रकृति कभी चेतन हो सकती है ?

उत्तर : नहीं, प्रकृति कभी भी चेतन नहीं हो सकती है ?

प्रश्न 13 : क्या प्रकृति की ब्रह्म से स्वतन्त्र सत्ता है या ब्रह्म ही जगत रूप में परिवर्तित हो जाता है ?

उत्तर : प्रकृति की सत्ता ब्रह्म से पृथक और स्वतन्त्र है। ब्रह्म जगत रूप में कभी परिवर्तित नहीं होता हैं।

प्रश्न 14 सत्व, रज, तम वास्तव में गुण हैं, या द्रव्य है ?

उत्तर : सत्व, रज, तम वास्तव में द्रव्य हैं, किन्तु सत्व गुण, रजो गुण, तमो गुण नाम से जाने जाते हैं।

प्रश्न 15 : क्या प्रकृति के समस्त परमाणु एक ही स्वरूप वाले हैं ?

उत्तर : नहीं, प्रकृति के परमाणु अलग–अलग स्वरूप, अलग–अलग गुण, कर्म, स्वभाव, रंग, रूप, आकार, भार वाले हैं।

— **आचार्य ज्ञानेश्वरार्यः**, रोजड़

समाचार –

अखिल भारतीय दयानन्द सेवाश्रम संघ (पंजी.) दिल्ली शाखा–थान्दला जिला–झाबुआ (म.प्र.) के स्थापना के 50 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में स्वर्ण जयन्ती समारोह व विराट वैदिक सम्मेलन

दिनांक 11, 12, 13 जनवरी 2019

भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री स्व. लाल बहादुर शास्त्री की प्रेरणा से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली द्वारा स्थापित सेवाश्रम को 50 वर्ष पूर्ण होने के पावन अवसर पर थांदला, जिला झाबुआ (म.प्र.) में अत्यन्त उत्साह के साथ स्वर्ण जयन्ति समारोह मनाया जा रहा है। इस अवसर पर सेवाश्रम व महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान उज्जैन, म. प्र. (मानव संसाधन मन्त्रालय भारत सरकार) के संयुक्त तत्वावधान में वृहद स्तर पर वैदिक सम्मेलन का आयोजन किया गया है। समारोह में सम्पूर्ण देश से 100 से अधिक वैदिक विद्वान, साधु सन्यासी व समाजसेवी महानुभावों का शुभागमन होने जा रहा है।

अतः समस्त राष्ट्रभक्त, देशभक्त माताओं, बहनों, नौजवानों एवं महानुभावों को सादर निमन्त्रण करते हुए आग्रह करते हैं कि आप स्वयं पधारे व तन – मन – धन से आदिवासी क्षेत्र में चल रहे सेवाकार्य में सहयोग प्रदान कर अपने राष्ट्र धर्म का परिचय दें।

विशेष : झाबुआ क्षेत्र में आर्य समाज की बहुत आवश्यकता है, इसमें हम सबको सहयोग देना चाहिए।

– **प्रकाश आर्य**
सभामन्त्री
म.भा.आर्य प्रति. सभा, भोपाल

ईजानाः स्वर्गं यन्ति लोकम्।
(अथर्व. 18.4.2)
यज्ञकर्ता स्वर्ग को जाते हैं।

विशेष सूचना

ध्यान देवें – अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन 2018 के लिए जिनके पास कूपन अथवा रसीद कट्टे हैं, वे कृपया तुरन्त राशि एवं रसीद कट्टे मेरे निम्न पते पर भेजें। यदि उन्होंने दिल्ली कार्यालय में जमाकर दिए हैं तो उसकी जानकारी भी मुझे तुरन्त देवें। कृपया इस पर विशेष ध्यान देवें।

संगठन सहायक का मनोनयन

सभा प्रधान श्री इन्द्रप्रकाश जी गॉधी द्वारा श्री दिनेश श्रीवास्तव को संगठन सहायक के रूप में मनोनीत किया गया है। व्यक्ति, परिवार और समाज को संगठित करना। आप एक आर्य समाजी, कुशल संगठक एवं व्यवहारिक व्यक्ति है। श्री दिनेश श्रीवास्तव आर्य समाजों से निरन्तर सम्पर्क रखेगें। सभा के आदेशानुसार उन्हें समय समय पर मार्गदर्शन और उनकी समस्याओं को सभा तक पहुंचाने का कार्य करेगें। आपका प्रमुख कार्य संगठन का रहेगा।

प्रिय पाठकवृन्द,

वैदिक रवि आपका अपना, अपनी सभा का पत्र है। प्रयास किया जा रहा है कि यह अत्यन्त रोचक, ज्ञानवर्धक पत्रिका बनें। हमारी अपनी बात उन लोगों तक भी पहुंचना चाहिए जो वैदिक विचारों से दूर हैं। इसी भावना से पत्रिका सम्पादन किया जा रहा है जिसे प्रत्येक व्यक्ति पढ़े और इसे पसन्द करे। इसके अधिक से अधिक पाठक हो सकें, इसलिए वैदिक रवि के ग्राहक संख्या बढ़ाने में सहयोगी बनें, अपने परिवार, मित्रों, सगे संबंधियों को इसके ग्राहक बनाइए।

विशेष–बार–बार निवेदन किया जा रहा है कि पत्रिका का और अच्छा स्तर बनें। इस हेतु अपने या स्थापित विद्वानों के लेख, विचार, कविता, समाचार महू के पते पर प्रेषित करें। कृपया इस ओर ध्यान देवें।

प्रांतीय सभा से प्रचार हेतु पुस्तकें व स्टीकर प्राप्त करें

वेद परमात्मा का दिया हुआ सृष्टि का प्रथम पवित्र ज्ञान है, जो पूर्ण है सबके लिए है, सदा के लिए है, वही सनातन और धर्म का आधार है।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

ईश्वर को मानने से पहले उसे जानना आवश्यक है, ईश्वर वही है जो सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

एक सफल, सुखी, श्रेष्ठ जीवन के लिए मात्र भौतिक सम्पदा धन, सम्पत्ति, मकान ही पर्याप्त नहीं है, आत्मिक सम्पदा, जो आत्मा, मन और बुद्धि की पवित्रता व विकास से प्राप्त होती है, वह भी आवश्यक है।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए। अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना ■ पढ़ाना और सुनना ■ सुनाना सब आर्यों (श्रेष्ठ मानवों) का परम धर्म है।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

हमारा राष्ट्रीय कर्तव्य

...हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थ से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिल के प्रीति से करें।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

॥ ओ३म् ॥

सम्प्रदायों, मजहबों की स्थापना का आधार विभिन्न मानवीय विचार धाराएं हैं, इसलिए वे अनेक हैं। किन्तु धर्म उस एक परमात्मा का ज्ञान हैं, इसलिए सब मनुष्यों का धर्म भी एक है, वही सबको संगठित करता है।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

ईश्वर एक है, उसके गुण-कर्म और स्वभाव अनेक है, इसलिए हम उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। किन्तु उसका मुख्य नाम ओ३म् है, उसी का स्मरण करना चाहिए।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

स्तुति, प्रार्थना, उपासना, पूजा हमारा व्यक्तिगत धर्म है, किन्तु पूर्ण धर्म पालन तो व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और विश्व धर्म के पालन से होता है।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

आर्य समाज

॥ ओ३म् ॥

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

आर्य समाज

मानव कल्याणार्थ

※ आर्य समाज के दस नियम ※

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरुप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सब से प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

एम.पी.एच.आई.एन. 2003 12367

पंजीयन संख्या म.प्र./भोपाल/32/2015-17

अवितरित रहने पर कृपया निम्न पते पर लौटायें

मध्य भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा

तात्या टोपे नगर, भोपाल-462003(म.प्र.)

मुद्रक, प्रकाशक, इन्द्र प्रकाश गांधी द्वारा कौशल प्रिन्टर्स, भोपाल से मुद्रित कराकर
मध्य भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा कार्यालय, तात्या टोपे नगर, भोपाल से प्रकाशित। संपादक - प्रकाश आर्य, महू

AMIT CHATURVEDI # 98262-71062